॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

ऋग्वेदीय

सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषद्

शान्तिपाठ

ॐ वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि। वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीः। अनेनाधीतेनाहोरात्रान् संदधाम्यृतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु। तद्वक्तारमवतु। अवतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम्॥

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

प्रथम खण्ड

श्रीमहालक्ष्मीका श्रीसूक्तके अनुसार ध्यान, न्यास, पूजन और यन्त्रकी विधि

हरिः ॐ। एक समय देवताओंने भगवान् आदिनारायणसे कहा—'भगवन्! हमारे लिये सौभाग्यलक्ष्मी-विद्याका उपदेश कीजिये।' भगवान्ने कहा—'बहुत अच्छा, आप सब देवगण एकाग्रचित्त होकर सुनें। जो स्थूल, सूक्ष्म एवं कारणरूप तीनों अवस्थाओंसे परे तुरीयस्वरूपा हैं—नहीं-नहीं, तुरीयसे भी अतीत अर्थात् निर्गुणस्वरूपा हैं, सबसे बढ़कर उत्कट अर्थात् भयङ्कर रूपवाली हैं तथा जो सभी मन्त्रोंको आसन बनाकर उनपर विराजमान हैं, पीठों और उपपीठोंमें प्रतिष्ठित देवताओंसे आवृत हैं, चार भुजाओंसे युक्त हैं—उन श्री अर्थात् लक्ष्मीदेवीका '**हिरण्यवर्णाम्०**' इत्यादि श्रीसूक्तकी पञ्चदश ऋचाओंके द्वारा ध्यान करें।'

उक्त पञ्चदश ऋचाओंवाले श्रीसूक्तके इन्दिरा, आनन्द, कर्दम और चिक्लीत ऋषि हैं। श्री अर्थात् इन्दिरा प्रथम मन्त्रकी ऋषि हैं तथा आनन्द, कर्दम और चिक्लीत शेष चतुर्दश मन्त्रोंके द्रष्टा हैं। ये तीनों इन्दिरा (लक्ष्मी)-के पुत्र हैं। '**हिरण्यवर्णाम्०**' आदि प्रथम तीन ऋचाओंका अनुष्टुप् छन्द है, '**कां सोस्मि०**' इस ऋचाका बृहती छन्द है, उसके आगेकी दो ऋचाओंका त्रिष्टुप् छन्द है, उनसे अगले आठ मन्त्रोंका अनुष्टुप् छन्द है। शेष मन्त्रोंका छन्द है प्रस्तारपङ्क्ति। श्री और अग्नि इन ऋचाओंके देवता हैं, '**हिरण्यवर्णाम्**' यह बीज है, '**कां सोस्मि**' यह शक्ति है। हिरण्मयी, चन्द्रा, रजतस्रजा, हिरण्यस्रजा, हिरण्या, हिरण्यवर्णा—इन नामोंको चतुर्थी विभक्तिमें रखकर आदिमें प्रणव और अन्तमें नमः बोलकर अङ्गन्यास करे। जैसे—

ॐ हिरण्मय्यै नमः हृदयाय नमः। ॐ चन्द्रायै नमः शिरसे स्वाहा। ॐ रजतस्रजायै नमः शिखायै वषट्। ॐ हिरण्यस्रजायै नमः कवचाय हुम्। ॐ हिरण्यायै नमः नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ हिरण्यवर्णायै नमः अस्त्राय फट्।

—पश्चात् श्रीसूक्तके मन्त्रोंसे अङ्गन्यास करे। सिर, नेत्र, कर्ण, नासिका, मुख, कण्ठ, दोनों भुजाएँ, हृदय, नाभि, लिङ्ग, गुदा, ऊरु (जाँघ), जानु, जङ्घा (पिंडली)—इन स्थानोंमें श्रीसूक्तके मन्त्रोंसे क्रमशः न्यास करे। इसके बाद निम्नलिखित मन्त्रके अनुसार ध्यान करे—

अरुणकमलसंस्था तद्रजःपुञ्जवर्णा
करकमलधृतेष्टाभीतियुग्माम्बुजा च।
मणिकटकविचित्राऽऽलङ्कृताऽऽकल्पजालैः
सकलभुवनमाता संततं श्रीः श्रियै नः॥

अर्थात् हलके लाल (गुलाबी) रंगके कमलदलपर बैठी हुई, कमल-परागकी राशिके समान पीतवर्णवाली, चारों हाथोंमें क्रमशः वर-मुद्रा, अभय-मुद्रा और दो कमल-पुष्प धारण किये हुए, मणिमय कड़ोंसे विचित्र शोभा धारण करनेवाली और अलङ्कारसमूहोंसे अलङ्कृत, समस्त लोकोंकी जननी श्रीमहालक्ष्मीदेवी निरन्तर हमें श्रीसम्पन्न करें॥ १॥

(तत्पश्चात् यन्त्र लिखकर उसकी पूजा करे। यन्त्रके कर्णिकावृत्तके ऊपर अष्टदल, उसपर द्वादशदल तथा द्वादशदलके ऊपर षोडशदल बनाकर तीनोंको

एक-एक वृत्तसे घेर दे।) पीठकर्णिका अर्थात् बीजकोषके भीतर साध्य-कार्यसहित श्रीबीज (श्रीं)-को लिखे। उसके बाद अष्टदल, द्वादशदल और षोडशदल पद्मोंके ऊपर और भूवृत्तोंके बीचमें श्रीसूक्तकी आधी-आधी ऋचा लिखे। (अर्थात् अष्टदलके ऊपर और पहले भूवृत्तके अन्दर '**अश्वपूर्वां रथमध्याम्**' इत्यादि ऋचाको, द्वादशदलके ऊपर तथा द्वितीय भूवृत्तके भीतर '**कां सोस्मितां हिरण्यप्राकाराम्**' इत्यादि तथा षोडशारके ऊपर तथा तृतीय भूवृत्तके भीतर '**गन्धद्वारां दुराधषाम्**' इत्यादि ऋचा लिखे।) उसके बाहर निर्भूवृत्तमें '**यः शुचिः प्रयतो भूत्वा**' इत्यादि फलश्रुतिरूप ऋचाको लिखकर षोडशारके मध्य और ऊपर अकारसे सकारतक मातृका-वर्णोंको लिखे। (क्रम यह है कि प्रत्येक सकार-पर्यन्त दलमें दो-दो व्यञ्जन-वर्ण तथा प्रत्येक दलके ऊपर भूवृत्तके नीचे क्रमशः अकारादि सोलह स्वर-वर्णोंको लिखे। इसी प्रकार द्वादशदलके दो-दो दलोंके पार्श्वमें क्रमशः '**ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं स्त्रौं जगत्प्रसूत्यै नमः**' ये अक्षर लिखे तथा द्वादशदलके दलोंमें '**ह्रीं श्रीं क्लीं**' इन बीजोंको दो-दो करके लिखे। फिर भूवृत्तके नीचे अष्टदल कमलके दो-दो दलोंके पार्श्वमें क्रमशः 'ह' और 'क्ष' लिखे। अष्टदलके दलोंमें आ, ई, ऊ और ॠ अनुस्वारसहित लिखकर षट्कोणके कोणोंमें '**श्रीं ह्रीं क्लीं**' बीजोंको क्रमशः दो-दो बार लिखे और प्रणवद्वारा षट्कोणको घेर दे।) सबके ऊपर निर्भूवृत्तमें वषड्युक्त त्वरिताबीजके साथ श्रीबीजको लिखे। इस प्रकार दस अङ्गोंवाला श्रीचक्र अर्थात् प्रणव, षट्कोण, भूवृत्त एवं अष्टदल, भूवृत्त, द्वादशदल, भूवृत्त, षोडशदल, भूवृत्त एवं निर्भूवृत्त बनाये।

'**श्रां हृदयाय नमः**' इत्यादि अङ्गमन्त्रोंसे प्रथम आवरण-पूजा होती है। पद्म आदि निधियोंसे द्वितीय आवरण-पूजा होती है। लोकपालों अर्थात् इन्द्र आदि देवताओंसे तृतीय आवरण-पूजा होती है। उनके वज्रादि आयुधोंसे चतुर्थ आवरण-पूजा होती है। श्रीसूक्तके अन्तर्गत ऋचाओंद्वारा आवाहनादि अर्थात् आवाहन, संनिधापन, सम्बोधन, सम्मुखीकरण आदि कार्य होते हैं। (फैली हुई अञ्जलिमें दोनों अनामिकाओंके मूलमें अङ्गुष्ठके सिरोंको रखनेसे आवाहनी मुद्रा होती है। दोनों अङ्गुष्ठोंको ऊपर उठा दोनों मुष्टियोंको संयुक्त करनेसे संनिधापनी मुद्रा होती है। इन दोनों अङ्गुष्ठोंको मुष्टियोंमें प्रवेश करानेसे सम्बोधनी मुद्रा होती है। दोनों मुष्टियोंको उत्तान करके मिलाये रखनेसे सम्मुखीकरणी मुद्रा होती है और आवाहनी मुद्राको अधोमुख करनेसे स्थापनी मुद्रा होती है।) इसके पश्चात् (देवीकी षोडशोपचार पूजा करके) पुरश्चरणके लिये षोडश सहस्र मन्त्र-जप करे। (यहाँतक श्रीमहालक्ष्मीपूजाका क्रम बताया गया।)

(इसके बाद सौभाग्यलक्ष्मी-पूजाका क्रम लिखा जाता है—) एकाक्षर सौभाग्यलक्ष्मी-मन्त्र '**श्रीः**' के भृगु ऋषि हैं, '**नीचृद्गायत्री**' छन्द है और श्री देवता हैं। '**श्रीं**' बीज है। '**श्रां**' इत्यादिके द्वारा अङ्गन्यास करे। जैसे—

श्रां हृदयाय नमः। श्रीं शिरसे स्वाहा। श्रूं शिखायै वषट्। श्रैं कवचाय हुम्। श्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्। श्रः अस्त्राय फट्।

इसके पश्चात् नीचे लिखे अनुसार ध्यान करे—

भूयाद्भूयो द्विपद्माभयवरदकरा तप्तकार्तस्वराभा
शुभ्राभ्राभेभयुग्मद्वयकरधृतकुम्भाद्विरासिच्यमाना ।
रक्तौघाबद्धमौलिर्विमलतरदुकूलार्तवालेपनाढ्या
पद्माक्षी पद्मनाभोरसिकृतवसतिः पद्मगा श्रीः श्रियै नः॥

'जिन्होंने अपने दोनों हाथोंमें दो पद्म तथा शेष दोमें वर और अभय मुद्राएँ धारण कर रखी हैं, तप्त काञ्चनके समान जिनके शरीरकी कान्ति है, शुभ्र मेघकी-सी आभासे युक्त दो हाथियोंकी सूँड़ोंमें धारण किये हुए कलशोंके जलसे जिनका अभिषेक हो रहा है, रक्तवर्णके माणिक्यादि रत्नोंका मुकुट जिनके सिरपर सुशोभित है, जिनके वस्त्र अत्यन्त स्वच्छ हैं, ऋतुके अनुकूल चन्दनादि आलेपनके द्वारा जिनके अङ्ग लिप्त हैं, पद्मके समान जिनके नेत्र हैं, पद्मनाभ अर्थात् क्षीरशायी विष्णुभगवान्के उरःस्थलमें जिनका निवास है, वे कमलके आसनपर विराजमान श्रीदेवी हमारे लिये परम ऐश्वर्यका विधान करें।'

(इस प्रकार ध्यान करके एक पीठयन्त्र अङ्कित करे।) वह पीठयन्त्र तीन वृत्तोंसे युक्त अष्टदल पद्म, द्वादश राशिखण्ड तथा चतुष्कोण—इस आकारका रमापीठ होता है। अष्टदलकी कर्णिका अर्थात् बीजकोषमें साध्यसहित श्रीबीज (**श्रीं**) लिखना चाहिये—जैसे '**श्रीं श्रीर्मा देवी जुषताम्।**' (इसके पश्चात् प्रातःकृत्य, पीठन्यास एवं ऋष्यादिन्यास करके) आदिमें प्रणव और अन्तमें

'नमः' जोड़कर प्रत्येक नामके साथ चतुर्थी विभक्तिका प्रयोग करते हुए (जैसे—'**ॐ विभूत्यै नमः**' इत्यादि) विभूति, उन्नति, कान्ति, सृष्टि, कीर्ति, संनति, व्युष्टि, सत्कृष्टि एवं ऋद्धि—इन नौ शक्तियोंकी पूजा करे। (इसके बाद '**श्रीकमलासनाय नमः**' कहकर आसनका न्यास करे, और) अङ्गन्यासके द्वारा प्रथम आवरणकी पूजा करे। ('**श्रां हृदयाय नमः**' इत्यादिके द्वारा अग्नि आदि कोणमें स्थित केशरोंमें तथा दिशाओंमें पूजा करके पूर्वादि दिशाओंमें) क्रमशः वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्धको पूजे (तथा अग्नि आदि कोणोंमें क्रमशः मदक—नव-शाक-विशेष, सलिल, गुग्गुल एवं कुरुण्टक—पुष्पविशेषकी पूजा करे। देवीके दक्षिणमें शङ्ख नामक निधि और वसुधाकी तथा वाममें पद्म नामक निधि और वसुमतीकी पूजा करे।) इस प्रकार द्वितीय आवरणकी पूजा होती है। फिर बालकी आदि अर्थात् बालकी, विमला, कमला, वनमालिका, विभीषिका, मालिका, शाङ्करी और वसुमालिकाकी पूजा करे। इस प्रकार तृतीय आवरणकी पूजा होती है। इसके पश्चात् इन्द्र आदि देवताओं तथा उनके वज्र आदि आयुधोंकी पूजासे चतुर्थ आवरणकी पूजा होती है। पुरश्चरणके लिये बारह लाख मन्त्र-जप करना चाहिये। (इस प्रकार एकाक्षरी सौभाग्यलक्ष्मीकी पूजा-विधि समाप्त हुई।)

(अब '**श्रीं ह्रीं श्रीं**' रूप त्र्यक्षरी विद्याकी पूजा-विधि बतायी जाती है। इसका पूजा-क्रम एकाक्षरीके पूजा-क्रमके समान ही है। केवल तृतीय आवरणकी पूजामें कुछ विशेषता है।) यहाँ आदिमें प्रणव और अन्तमें नमः लगाकर प्रत्येक नामका चतुर्थी विभक्तिसहित प्रयोग करते हुए (जैसे, '**ॐ श्रियै नमः**' इत्यादि) श्री, लक्ष्मी, वरदा, विष्णुपत्नी, वसुप्रदा, हिरण्यरूपा, स्वर्णमालिनी, रजतस्रजा, स्वर्णप्रभा, स्वर्णप्राकारा, पद्मवासिनी, पद्महस्ता, पद्मप्रिया, मुक्तालङ्कारा, चन्द्रसूर्या, बिल्वप्रिया, ईश्वरी, भुक्ति, मुक्ति, विभूति, ऋद्धि, समृद्धि, कृष्टि, पुष्टि, धनदा, धनेश्वरी, श्रद्धा, भोगिनी, भोगदा, सावित्री, धात्री, विधात्री प्रभृति नाम-मन्त्रोंके द्वारा शक्तिकी पूजा करे। एकाक्षर-मन्त्रके समान ही अङ्गादिके द्वारा पीठ-पूजा करे। पुरश्चरणके लिये एक लाख मन्त्र-जप करे। जपका दशांश तर्पण, तर्पणका दशांश हवन और हवनका दशांश ब्राह्मणभोजन कराये (तथा ब्राह्मण-भोजनका दशांश अभिषेक अर्थात् मार्जन करे)। निष्काम उपासना करनेवालोंको ही श्रीविद्याकी सिद्धि होती है। सकाम उपासना करनेवालोंको कदापि सिद्धि नहीं होती। इस प्रकार सौभाग्यलक्ष्मी-उपनिषद्का श्रीक्रम नामक प्रथम खण्ड समाप्त हुआ॥ १॥

॥ प्रथम खण्ड समाप्त॥

द्वितीय खण्ड

योगसम्बन्धी उपदेश

इसके बाद आदिनारायणसे देवताओंने कहा—भगवन्! तुरीया मायाके द्वारा निर्दिष्ट तत्त्वके विषयमें हमसे कहिये। 'बहुत अच्छा' कहकर भगवान् आदिनारायणने उपदेश आरम्भ किया—

'योगसे योगको जानना चाहिये, योगसे योग बढ़ता है। जो योगी योगमें सदा सावधान रहता है, वह योगी चिरकालतक—अनन्तकालतक आनन्दोपभोग करता है। मितभोगी अर्थात् शरीरनिर्वाहके लिये आवश्यक अन्न-वस्त्रादिका उपभोग करनेवाला साधक राग-द्वेष-मोहरूपी कषाय—मलके परिपक्व हो जानेपर, निद्रा—आलस्य त्यागकर, प्रपञ्चके ब्रह्मत्वकी प्राप्तिमें बाधक होनेके कारण एकान्त स्थानमें (संसारके कोलाहलसे रहित प्रदेशमें) जाकर साधन करता है—आत्माको परमात्मामें लगानेका अभ्यास करता है। वह या तो शीतोष्ण आदि द्वन्द्वोंसे रहित होनेके लिये राजयोगमें प्रवृत्त होता है अथवा गुरूपदिष्ट मार्गपर चलता हुआ प्राणायामके द्वारा हठयोगका अवलम्बन करता है। तात्पर्य यह कि राजयोग और हठयोगके भेदसे योग द्विविध है। प्राणायामका अभ्यास करनेवाले पहले मुखसे वायुको खींचकर भीतर भरते हैं और नाभि-प्रदेशसे अपानवायुको जठराग्निके कोष्ठमें खींचकर मुखके द्वारा खींची हुई वायुके साथ उसका संयोग कराते हैं; पश्चात् अँगूठे, अँगुलियों तथा दोनों हथेलियोंके द्वारा दोनों कान, नेत्र तथा नासा-पुटोंको बंद करके प्राणायामके अभ्यासद्वारा तथा प्रणवका नाना प्रकारसे ध्यान करके उसीमें तल्लीन हुए योगीजन चैतन्यस्वरूप आत्माका साक्षात्कार करते हैं॥ १—३॥

'अभ्यासकी एक और विधि है—जो कान, मुख, नेत्र और नासाछिद्रोंको बंद करके ही की जाती है। वह है शुद्ध सुषुम्णा नाडीमें प्रणवके विशुद्ध अनाहत नामक नादको स्पष्ट सुनना। अनाहतचक्रमें ध्वनिको सुननेपर नाना प्रकारके विचित्र घोष सुने जाते हैं और इस साधनाके द्वारा साधक तेजस्वी हो जाता है, उसके शरीरमें दिव्य गन्ध आने लगती है और स्वस्थ होकर वह दिव्य देह प्राप्त करता है। शून्यमें अर्थात् सुषुम्णा नाडीमें पूरे मनोयोगके साथ ध्वनि सुनते रहनेसे आरम्भमें ही—जहाँसे वह सुषुम्णा नाडी आरम्भ होती है, उस मूलाधारचक्रमें ही साधक योगवान् हो जाता है अर्थात् दीपशिखाके आकारके जीवात्माको हृदयपुण्डरीकसे मूलाधारचक्रमें लाकर सुषुम्णा नाडीसे संयुक्त कर देता है। इस प्रकार इच्छाशक्तिकी प्रेरणासे जब जीवात्मा सुषुम्णा-मार्गपर चलने लगता है, तब द्वितीय अर्थात् स्वाधिष्ठानचक्रको विघटित करके—भेदकर उसीके मध्यस्थित छिद्रमेंसे होकर प्राणवायु मध्यगा होती है अर्थात् सुषुम्णामें प्रवेश कर जाती है॥ ४—६॥

पद्मासनादिपर स्थित हुए योगीका आसन दृढ़ होता है। उसके बाद विष्णुग्रन्थि अर्थात् मायाको, जो तृतीय मणिपूरक नामक चक्रमें रहकर अनेक कामनाओंका विस्तार करती रहती है, विच्छिन्न कर देनेपर परमानन्दकी प्राप्ति सम्भव हो जाती है। शून्य अर्थात् मायाको लाँघकर उठता हुआ प्राणवायु जब नाडीके साथ संघर्षणको प्राप्त होता है, तब उससे भेरीके समान ध्वनि सुन पड़ती है और तृतीय मणिपूरकचक्रको भेदकर चलनेपर प्राणवायुसे मर्दल-ध्वनि अर्थात् मृदङ्ग-जैसी ध्वनि होती है। इसके आगे अन्य चक्रोंको भेदता हुआ वह महाशून्य अर्थात् आकाशचक्रमें जाता है, जहाँ सब प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। उसके बाद प्राणवायु तालुचक्रसे चित्तको जयकर तालुचक्रको भेदता है, जहाँ चित्तगत सम्पूर्ण आनन्दकी प्राप्ति होती है॥ ७—९॥

इस साधनाकी समाप्तिमें वैष्णवशब्द—प्रणव शब्दायमान होता है, शब्दके रूपमें स्वयं प्रकट होता है। उस प्रणव-ध्वनिमें चित्त विलीन हो जाता है, इस प्रकार सनकादि मुनियोंने कहा है। उस महाशून्य चक्रमें स्थित होकर साधक अन्त अर्थात् जीवमें अनन्त—परमात्माका समारोप करता है, मायाग्रस्त स्वरूप—अंशरूप आत्मामें निरंश परमात्माको समर्पितकर तथा आत्माकी सर्वव्यापक प्रकृतिका ध्यान करके कृतकृत्य हो जाता है, अमृतस्वरूप हो जाता है। संप्रज्ञातयोगको असंप्रज्ञातयोगसे जीते और भाव अर्थात् सविचार समाधिका निरोध अभाव—निर्विचार समाधिसे करे; उसके बाद निर्विकल्प समाधिको प्राप्त करके साधक परमतत्त्व—कैवल्यमें स्थित होता है। निर्विकल्प समाधिमें स्थित साधकका अहंभाव छूट जाता है और आत्मतत्त्वमें अध्यस्त मायात्मक जगत्का भी लोप हो जाता है। ऐसा विद्वान् पुनः 'यह मैं हूँ और यह मेरा है' इत्यादि चिन्तामें नहीं पड़ता॥ १०—१३॥

'जिस प्रकार पानीमें नमक मिलानेसे वह उसमें घुल-मिल जाता है, उसी प्रकार मनका आत्मामें विलीन हो जाना समाधि कहलाता है। जब प्राणायामके अभ्याससे प्राणवायु सम्यक्रूपसे क्षीण होकर कुम्भकमें स्थिर हो जाता है और मानसिक वृत्तियाँ अत्यन्त विलीन हो जाती हैं, उस समय तैलधारावत् चित्तका आत्माके साथ एकीभाव समाधि कहलाता है। जीवात्मा और परमात्माका समत्व होनेपर जब सारे सङ्कल्प नष्ट हो जाते हैं, उस स्थितिको समाधि कहते हैं। प्रभा अर्थात् जागतिक बोधसे शून्य जिस स्थितिमें मन और बुद्धि पूर्णतः विलीन हो जाते हैं, जिसमें कुछ आभासित नहीं होता—सब शून्याकार प्रतीत होता है, वह निरामय—भवरोगकी निवृत्तिकी अवस्था समाधि कहलाती है। शरीरके इधर-उधर चलनेपर भी देही अर्थात् जीवात्मा जब निश्चल, नित्य स्वयम्प्रकाश स्वरूपमें स्थित रहता है, उसे समाधि कहना चाहिये। उस समय साधकका मन जहाँ-जहाँ जाता है, वहाँ-वहाँ परमपदकी प्राप्ति होती है। उसके लिये सर्वत्र परब्रह्म समवस्थित होता है। सर्वत्र परमब्रह्म समवस्थित होता है।'॥ १४—१९॥

तृतीय खण्ड

नवचक्र-विवेक

पश्चात् भगवान् आदिनारायणसे देवताओंने निवेदन किया—'भगवन्! आप कृपया हमारे लिये नवचक्र-विवेकके विषयमें उपदेश कीजिये।' 'बहुत अच्छा' कहकर भगवान्ने उपदेश आरम्भ किया—

'मूलाधारमें ब्रह्मचक्र है, वह योनिके आकारमें तीन घेरोंसे युक्त है; वहाँ कर्णिकाके मूलमें कुण्डलिनीशक्ति सोये हुए सर्पके आकारमें स्थित है। तप्त अग्निके रूपमें उसका तबतक ध्यान करना चाहिये, जबतक वह जाग्रत् न हो जाय। वहीं भगवती त्रिपुराका स्थान कामरूप नामक पीठ है, जिसकी उपासना करनेसे सारे भोगोंकी प्राप्ति होती है। इतना आधारनामक प्रथम चक्रके विषयमें हुआ॥ १॥

'दूसरा छः दलोंका स्वाधिष्ठानचक्र है। उस षट्दल पद्मके कर्णिकापीठमें पश्चिमाभिमुख एक शिवलिङ्गका, जो मूँगेके अङ्कुरके समान लाल वर्णका है, ध्यान करे। वहाँ उड्यानपीठ है, उसकी उपासना करनेसे जगत्को आकर्षित करनेकी सिद्धि प्राप्त होती है। तीसरा नाभिचक्र सर्पके समान कुटिल आकारका और पाँच घेरोंसे आवृत है। उस चक्रमें कोटि-कोटि बालसूर्योंकी-सी प्रभासे युक्त तथा तडित्के समान क्षीण अङ्गोंवाली कुण्डलिनीशक्तिका ध्यान करे। यह शक्ति जाग्रत् होनेपर सामर्थ्यवती होती है और सब प्रकारकी सिद्धियोंको प्रदान करती है। मणिपूरक-चक्र हृदयचक्र है। वह अष्टदल पद्मके आकारका नीचेकी ओर मुख किये रहता है। उस चक्रमें ज्योतिर्मय लिङ्गका ध्यान करना चाहिये। वही ज्योतिर्मय लिङ्ग हंसकलाके नामसे विख्यात है, जो सर्वप्रिय है; उसके जाग्रत् होनेपर समस्त लोकोंको वशमें करनेकी शक्ति प्राप्त होती है। कण्ठमें जो चक्र है, वह चार अङ्गुल प्रमाणका है; उसमें बायीं ओर इडा अर्थात् चन्द्रनाड़ी और दाहिनी ओर पिङ्गला अर्थात् सूर्यनाडी है। इन दोनोंके बीचमें श्वेतवर्णकी सुषुम्णा नाड़ीका ध्यान करे। जो इसको जानता है, उसका अनाहतचक्र सिद्धि प्रदान करता है। इसके आगे तालुचक्र है, जहाँ निरन्तर अमृतकी धार प्रवाहित होती रहती है। तालुचक्रमें दस अथवा बारह दल होते हैं। घाँटीके चिह्नकी जड़में तथा आगेके दाँतोंकी जड़तक फैला हुआ जो चक्रके आकारका रन्ध्र—छिद्र है, उसीमें तालुचक्र स्थित है। उस चक्रमें शून्यका ध्यान करे। इससे चित्त शून्यमें विलीन हो जाता है। सातवाँ भूचक्र अँगूठेके परिमाणका है, उस द्विदल पद्ममें निवातदीपशिखाके आकारमें ज्ञाननेत्रका ध्यान करे। इस चक्रके जाग्रत् होनेपर कपालकन्द अर्थात् अदृष्टके कारणभूत कर्मोंकी वाक्-सिद्धि अर्थात् उनके विषयका सारा ज्ञान हो जाता है। आठवाँ आज्ञाचक्र है, उसे ब्रह्मरन्ध्र अथवा निर्वाणचक्र भी कहते हैं। वह रन्ध्र सूईकी नोकके परिमाणका है। वहाँ गतिशील धूम्रशिखाके आकारका ध्यान करे। वहाँ जालन्धरपीठ है। उसकी उपासना करनेसे मुक्तिलाभ होता है। अतएव इसे परब्रह्मचक्र भी कहते हैं। नवाँ आकाशचक्र है। वहाँ षोडशदल पद्म ऊपरकी ओर मुख किये स्थित है। उसके बीचकी कर्णिका त्रिगुणोंकी जननी होनेके कारण तीन शिखरोंवाले पर्वतके आकारकी कही गयी है। उसके बीचमें ऊपरकी ओर झुकी हुई शक्ति है। उसको देखते हुए ध्यान करे। वहाँ ही पूर्णगिरिपीठ है, जिसकी उपासना करनेसे सब प्रकारकी कामनाओंकी सिद्धि होती है॥ २—९॥

'इस सौभाग्यलक्ष्मी-उपनिषद्को जो नित्य पढ़ता है, वह अग्निपूत होता है, वह वायुपूत होता है। वह सब प्रकारके धन-धान्य, स्त्री-पुत्र, हाथी-घोड़े, गाय-भैंस, दास-दासीसे युक्त योगी और ज्ञानी होता है। अन्तमें वह परमपदको प्राप्त करता है—जहाँसे फिर नहीं लौटता, फिर नहीं लौटता॥ १०॥

॥ तृतीय खण्ड समाप्त॥ ३॥

॥ ऋग्वेदीय सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषद् समाप्त॥

शान्तिपाठ

ॐ वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि। वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीः। अनेनाधीतेनाहोरात्रान् संदधाम्यृतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु। तद्वक्तारमवतु। अवतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम्॥

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

(सौभाग्यलक्ष्मी-उपनिषद्में वर्णित श्रीसूक्त)

अथ श्रीसूक्तप्रारम्भः

हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्त्रजाम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह॥ १॥

हे जातवेदा (सर्वज्ञ) अग्निदेव! सुवर्णके-से रंगवाली, किञ्चित् हरितवर्णविशिष्टा, सोने और चाँदीके हार पहननेवाली, चन्द्रवत् प्रसन्नकान्ति, स्वर्णमयी लक्ष्मीदेवीको मेरे लिये आवाहन करो॥ १॥

तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम्॥ २॥

अग्ने! उन लक्ष्मीदेवीको, जिनका कभी विनाश नहीं होता तथा जिनके आगमनसे मैं सोना, गौ, घोड़े तथा पुत्रादिको प्राप्त करूँगा, मेरे लिये आवाहन करो॥ २॥

अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रमोदिनीम्।
श्रियं देवीमुप ह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम्॥ ३॥

जिन देवीके आगे घोड़े तथा उनके पीछे रथ रहते हैं तथा जो हस्तिनादको सुनकर प्रमुदित होती हैं, उन्हीं श्रीदेवीका मैं आवाहन करता हूँ; लक्ष्मीदेवी मुझे प्राप्त हों॥ ३॥

कां सोस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रां
ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम्।
पद्मेस्थितां पद्मवर्णां
तामिहोप ह्वये श्रियम्॥ ४॥

जो साक्षात् ब्रह्मरूपा, मन्द-मन्द मुसकरानेवाली, सोनेके आवरणसे आवृत, दयार्द्र, तेजोमयी, पूर्णकामा, भक्तानुग्रहकारिणी, कमलके आसनपर विराजमान तथा पद्मवर्णा हैं, उन लक्ष्मीदेवीका मैं यहाँ आवाहन करता हूँ॥ ४॥

चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं
श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम्।
तां पद्मिनीमीं शरणं प्र पद्ये-
ऽलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणे॥ ५॥

मैं चन्द्रके समान शुभ्र कान्तिवाली, सुन्दर द्युति-शालिनी, यशसे दीप्तिमती, स्वर्गलोकमें देवगणोंके द्वारा पूजिता, उदारशीला, पद्महस्ता लक्ष्मीदेवीकी शरण ग्रहण करता हूँ। मेरा दारिद्र्य दूर हो जाय। मैं आपको शरण्यके रूपमें वरण करता हूँ॥ ५॥

आदित्यवर्णे तपसोऽधि जातो
वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु
या अन्तरा याश्च बाह्या अलक्ष्मीः॥ ६॥

हे सूर्यके समान प्रकाशस्वरूपे! तुम्हारे ही तपसे वृक्षोंमें श्रेष्ठ मङ्गलमय बिल्ववृक्ष उत्पन्न हुआ। उसके फल हमारे बाहरी और भीतरी दारिद्र्यको दूर करें॥ ६॥

उपैतु मां देवसखः
कीर्तिश्च मणिना सह।
प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन्
कीर्तिमृद्धिं ददातु मे॥ ७॥

देवि! देवसखा कुबेर और उनके मित्र मणिभद्र तथा दक्षप्रजापतिकी कन्या कीर्ति मुझे प्राप्त हों अर्थात् मुझे धन और यशकी प्राप्ति हो। मैं इस राष्ट्रमें—देशमें उत्पन्न हुआ हूँ, मुझे कीर्ति और ऋद्धि प्रदान करें॥ ७॥

क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम्।
अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात्॥ ८॥

लक्ष्मीकी ज्येष्ठ बहिन अलक्ष्मी (दरिद्रताकी अधिष्ठात्री देवी)-का, जो क्षुधा और पिपासासे मलिन—क्षीणकाय रहती हैं, मैं नाश चाहता हूँ। देवि! मेरे घरसे सब प्रकारके दारिद्र्य और अमङ्गलको दूर करो॥ ८॥

गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम्॥ ९॥

जो दुराधर्षा तथा नित्यपुष्टा हैं तथा गोबरसे (पशुओंसे) युक्त गन्धगुणवती पृथिवी ही जिनका स्वरूप है, सब भूतोंकी स्वामिनी उन लक्ष्मीदेवीका मैं यहाँ—अपने घरमें आवाहन करता हूँ॥ ९॥

मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः॥ १०॥

मनकी कामनाओं और संकल्पकी सिद्धि एवं वाणीकी सत्यता मुझे प्राप्त हों; गौ आदि पशुओं एवं विभिन्न अन्नों—भोग्य पदार्थोंके रूपमें तथा यशके रूपमें श्रीदेवी हमारे यहाँ आगमन करें॥ १०॥

कर्दमेन प्रजा भूता मयि सम्भव कर्दम।
श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम्॥ ११॥

लक्ष्मीके पुत्र कर्दमकी हम संतान हैं। कर्दम ऋषि! आप हमारे यहाँ उत्पन्न हों तथा पद्मोंकी माला धारण करनेवाली माता लक्ष्मीदेवीको हमारे कुलमें स्थापित करें॥ ११॥

आपः सृजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे।
नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले॥ १२॥

जल स्निग्ध पदार्थोंकी सृष्टि करे। लक्ष्मीपुत्र चिक्लीत! आप भी मेरे घरमें वास करें और माता लक्ष्मीदेवीका मेरे कुलमें निवास करायें॥ १२॥

आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह॥ १३॥

अग्ने! आर्द्रस्वभावा, कमलहस्ता, पुष्टिरूपा, पीतवर्णा, पद्मोंकी माला धारण करनेवाली, चन्द्रमाके समान शुभ्र कान्तिसे युक्त, स्वर्णमयी लक्ष्मीदेवीका मेरे यहाँ आवाहन करें॥ १३॥

आर्द्रां यः करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम्।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह॥ १४॥

अग्ने! जो दुष्टोंका निग्रह करनेवाली होनेपर भी कोमल-स्वभावकी हैं, जो मङ्गलदायिनी, अवलम्बन प्रदान करनेवाली यष्टिरूपा, सुन्दर वर्णवाली, सुवर्णमालाधारिणी, सूर्यस्वरूपा तथा हिरण्यमयी हैं, उन लक्ष्मीदेवीका मेरे लिये आवाहन करें॥ १४॥

तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो
दास्योऽश्वान् विन्देयं पुरुषानहम्॥ १५॥

अग्ने! कभी नष्ट न होनेवाली उन लक्ष्मीदेवीका मेरे लिये आवाहन करें, जिनके आगमनसे बहुत-सा धन, गौएँ, दासियाँ, अश्व और पुत्रादिको हम प्राप्त करें॥ १५॥

यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम्।
सूक्तं पञ्चदशर्चं च श्रीकामः सततं जपेत्॥ १६॥

जिसे लक्ष्मीकी कामना हो, वह प्रतिदिन पवित्र और संयमशील होकर अग्निमें घीकी आहुतियाँ दे तथा इन पंद्रह ऋचाओंवाले श्रीसूक्तका निरन्तर पाठ करे॥ १६॥

॥ श्रीसूक्त समाप्त॥

सङ्गका त्याग ही मोक्ष है

भावाभावे पदार्थानां हर्षामर्षविकारदा।
मलिना वासना यैषा सा सङ्ग इति कथ्यते॥
दुःखैर्न ग्लानिमायासि हृदि हृष्यसि नो सुखैः।
आशावैवश्यमुत्सृज्य निदाघासङ्गतां व्रज॥
सङ्गत्यागं विदुर्मोक्षं सङ्गत्यागादजन्मता।
सङ्गं त्यज त्वं भावानां जीवन्मुक्तो भवानघ॥

(अन्नपूर्णोपनिषद्)

पदार्थोंके होनेमें हर्ष और न होनेमें शोकरूपी विकार उत्पन्न करनेवाली जो मलिना वासना है, उसे सङ्ग कहते हैं। निदाघ! तुम दुःखोंमें ग्लानिका अनुभव मत करो और सुखोंसे हृदयमें हर्षित मत होओ। यों आशाओंकी परवशताको छोड़कर असंगावस्थाको प्राप्त करो। हे निष्पाप! सङ्गके त्यागको ही मोक्ष कहते हैं, सङ्गके त्यागसे जन्म-(मरण)-से छुटकारा मिलता है। अतएव समस्त पदार्थोंमें सङ्गका त्याग करके जीते ही मुक्त हो जाओ।